सांस्कृतिक समृद्धि का प्रतीक : दसमत कैना

जयप्रकाश साव

'दसमत कैना' की गाथा न प्रेमाख्यान है, न वीर गाथा, न कोई विस्मय-भरी रोमांच कथा है। लोक-गाथाओं की किसी भी प्रचलित कोटि में इसे वर्गीकृत करना कठिन है। छत्तीसगढ़ की घुमंतू देवार जाति के लोगों द्वारा गायी जाने वाली यह लुप्तप्राय लोकगाथा प्रतिरोध के उन केंद्रों की ओर इशारा करती है, जो दमित अस्मिताओं की मुक्ति-कामना और छटपटाहट के चलते सक्रिय होते हैं। लोक के अंदरूनी शक्ति-विमर्श में सत्ता की अतिक्रमणता और स्वेच्छाचार के विरुद्ध निरीह जन की नैतिक दृढ़ता का आग्रह किस तरह एक चुनौती बन जाता है, इसे यह गाथा अत्यंत कलात्मक ढंग से व्यंजित करती है।

दसमत कैना के वृत्तांत में दमन का वही सामाजिक अनुभव विमर्श का विषय बनता है, जो भारतीय समाज की सत्ता-संरचना में एक ओर वर्णसत्ता और दूसरी ओर पितृसत्ता की आततायी उपस्थिति का नतीजा है। कहने की जरूरत नहीं कि यह उपस्थिति भारतीय सामंतवाद का चारित्रिक लक्षण निर्धारित करती है। उसमें दमन के प्रतिवाद का इतिहास भी अन्तर्गुम्फित है। शास्त्रीय या अधिकारिक समझे जाने वाले आख्यानों या पुरा-वृत्तांतों में तो कम, किंतु लोक-आख्यानों में यह प्रतिवादी इतिहास अत्यधिक मुखर है। 'दसमत कैना' भी लोक के भीतर प्रतिवाद के मुहावरे की तलाश में रची हुई गाथा है। यह निर्बल के आत्मबोध को उस धरातल तक ले जाती है, जहाँ से वर्चस्व की किसी भी सत्ता का, चाहे वह कितनी ही प्रबल और निरंकुश हो, प्रतिकार किया जा सकता है। इस गाथा की नायिका दसमत का आत्मबोध मुख्यतः उसके स्त्रीत्व से निर्धारित होता है। यही उसकी अस्मिता का निर्णायक तत्व है, जो पितृसत्ता की विराट उपस्थिति में उसे सामाजिक रूप से पराधीन और जैविक रूप से निर्बल बनाता है, लेकिन दसमत स्त्रीतत्व के मान्य पारिवारिक-सामाजिक सीमांतों से टकराती है। उन्हें तोड़ने की कोशिश में वह प्रायः अपारंपरिक किस्म का एंटी-स्टीरियोटाइप स्त्रीत्व अर्जित करती है, जो पिता अथवा पति की सुरक्षा-छत्र में नहीं, बल्कि स्वतंत्रता और सुरक्षा-छत्र आत्म निर्णय के खुले आकाश में आकार लेता है। अपनी छह बहनों के विपरीत दसमत अपने पिता राजा भोज द्वारा पूछे जाने पर दो टूक कहती है–"पिताजी, मैं आपके कर्म से नहीं, अपने कर्म से खाती हूँ। आप तो सिर्फ जन्मदाता हैं।" किशोरी दसमत का यह निर्भीक कथन न सिर्फ उसके विलक्षण आत्मबोध को व्यक्त करता है, बल्कि पितृसत्ता की सामंती ठसक को अप्रत्याशित चुनौती देता है। यही दसमत के स्त्रीत्व का प्रस्थान बिंदु है। यहीं से वह स्त्रियोचित स्वप्नलोक में, जहाँ कैशोर्य में प्रत्येक स्त्री सम्भवतः जाना चाहती है, प्रवेश न कर यथार्थ की पथरीली धरती पर कदम रखती है। यहीं से उसके 'करम' की परीक्षा शुरू होती हैं। यहीं से उस पर पितृसत्ता का कहर बरपना शुरू होता है। राजा भोज ने उसके 'करम' को परखने के लिए ऐसे वर के साथ उसका विवाह कर दिया, जो रात को खाने को पाये तो दिन-भर भूखा रहता और दिन में खाने को मिला तो रात भूखा सोता था। स्वाभिमान-स्वतंत्रता की स्त्री भंगिमा के समक्ष आहत पुल्लिंगवादी मिथ्या गौरव की प्रतिक्रिया इससे अलग और क्या हो सकती है? स्त्री की नियति तय करने के अधिकार का स्वयंभू नियंत्रक यह पुरुष-अभिमान स्त्री के आत्मबोध की आँच

बर्दाश्त करने में असमर्थ रहते हुए तिलमिला उठता है। राजा भोज ने दसमत को कुछ इस तरह खींझ-भरे अंदाज में उसके पति सुदन बिहइया को दे दिया, जैसे एक औपनिषदिक गल्प में नचिकेता को उसके पिता ने यम को दे दिया था। नचिकेता ने जिस तरह नियति और कर्म का एक नया विमर्श सम्भव किया, कुछ इसी तरह दसमत ने अपने 'करम' से अपनी नियति को बदल डाला। और एक नयी नियति-पितृसत्ता की दृष्टि में अप्रत्याशित और अवांछित कर्म-गति, प्राप्त की–1

“तोर मेर हावै ग कतल बंगला के

पान ग बाम्हन देवता

मोर गधी के दुई कान।

तोर मेर हावै ग सेज -सुपेति

मोर गोदरी के अनलेख।

तोर मेर हा ग बंदूक-भाला

मोर कुदरी के मार।

तोर मेर हावै ग चका-सिपैया

ओरिया है घनचार।”

(भैसवार देवर के पाठ से)

दसमत के प्रति राजा भोज के व्यवहार में यदि पितृसत्ता की अधिनायकवादी आक्रामकता और उसकी निष्ठुरता व्यक्त होती है, तो दसमत का बुद्धि कौशल उसका स्त्रियोचित प्रतिपक्ष खड़ा कर देता है। पितृसत्ता की विध्वंसक हिंसा का यह रचनात्मक प्रतिउत्तर है। स्त्री के व्यक्तित्व की यह उठान-पिता को हतप्रभ कर देने वाला उत्तर और बुद्धि-नैपुण्य से अपना भाग्य संवारने का संकल्प-इस लोकगाथा में पितृसत्ता के असंतुष्ट संसार में ऐसी खलबली पैदा कर देती है, जिसे स्त्रीवादी लेखिका नाओमी वुल्फ ने आधुनिक संदर्भ में-लैंगिक भूचाल (Gender Quake) कहा है। किंतु यह भूचाल पैदा करने के बावजूद दशमत अंततः उस आख्यान की नायिका है, जो प्राक-आधुनिक यथार्थ रेखा के भीतर रचा गया है। इसलिए पितृसत्ता के प्राक-आधुनिक संस्करण से टकराते हुए वह अपनी स्वतंत्रता को अर्जित करने का इसरार उसी सीमा तक कर सकती है, जिस सीमा तक स्वयं पितृसत्ता उसे अनुमति देती है। यह अनुमति प्रतिवाद तक सीमित है। उसे विद्रोह करने की छूट नहीं है, जैसे कि एक आधुनिक स्त्री अपने समाज के आर्थिक-सामाजिक संबंधों की किसी दरार से निकलकर यदा-कदा यह छूट हासिल कर लेती है, किंतु वह पितृसत्ता के सम्मुख हथियार डाल देने की बजाय उससे संघर्ष करती है। इसलिए वह पितृसत्ता का प्रतिवाद अपने 'करम' से करती है।

क्या ऐसा नहीं लगता कि प्राक-आधुनिकता की आकांक्षा, स्त्रीत्व की जैव-सामाजिक परिधि के भीतर उसका आत्मबोध, दशमत के चरित्र और उसके संकल्प में चरितार्थ होती है? संभव है, स्त्री की यह दमित आकांक्षा फ्रायडीय मनोविज्ञान के मुताबिक उसके निजी स्वप्न-लोक में प्रक्षिप्त होती हो, लेकिन दशमत कैना जैसी कोई गाथा क्या उसके सामुदायिक स्वप्नलोक का प्रतिरूप नहीं जान पड़ती? जिस स्वतंत्रता का उपभोग वह वास्तविक जीवन में नहीं कर पाती सम्भवतः उसे ही अर्जित करने का संघर्ष लोकगाथा में रूपायित होता है। कहा जा सकता है कि गाथाएँ शायद दबी इच्छाओं की स्वप्न-पूर्ति है।

इस गाथा में दशमत के प्रति राजा महमदेव की आसक्ति और उसके परिणाम पर गौर किया जाना चाहिए। यह इस विपरीत लिंगी-आकर्षण की सहज परिणति नहीं है, जो किसी भी स्वस्थ समाज में स्वाभाविक रूप से मौजूद होता है। राजा महमदेव की आसक्ति अपने निपट जैविक चरित्र के कारण प्रेम या विपरीत लिंगी-आकर्षण की स्वस्थ सामाजिकता पर आच्छादित हो जाती है। मगर इस प्रयत्न में वह नैतिक रूप से खुद संकटग्रस्त हो जाती है। इससे उसकी वैधता का प्रश्न खड़ा होता है, किंतु ऐसे प्रश्न पुल्लिंगवाद जैविक प्रबलता के सामने कोई मायने नहीं रखते। उसे यदि राजा जैसी बड़ी सामंती हैसियत का समर्थन प्राप्त हो तो वह स्वयं को प्रायः अवेध्य और चुनौतीविहीन मानने लगता है। अपनी नैतिक वैद्यता का स्रोत वह बन जाता है। पितृसत्ता के इस सामंती अधिनायकवाद से आतंकित तमाम तरह की अस्मिताएँ उसके स्व-निर्णीत नैतिकवाद को आत्मसात कर लेती हैं। इसलिए सात रानियों और भरे-पूरे परिवार के रहते हुए भी दशमत के प्रति राजा की आसक्ति को निरस्त करने का साहस सामाजिक स्तर पर संदिग्ध दृढ़ता के साथ उठा दिखायी नहीं देता। स्वयं दशमत भी एकबारगी राजा के प्रणय-निवेदन को ठुकरा देने की बजाय उसे समझाइश देती है, इसके लिए पहले वह राजा को उसकी ऊँची हैसियत की तुलना में अपनी विपन्नता की दुहाई देती है–

“अरे सात बिहाती चंउरा धरे राजा री

काते ते कमती हस गा।

अरे छोटकी रानी पान खवाही

मंझली भाग डोलाय

अरे अन्तर मंझली गोड़ दाबही नीचे नहीं पस्तान।

अतका मजा ला तै छोड़ के राजा झन लग तैं मोर साथ।”

(चैतराम राम देवरा के पाठ से)

लेकिन राजा की आसक्ति इतनी प्रबल है कि उसकी जैविकता उसकी सामाजिकता को सोख लेती है। वह दशमत को प्राप्त करने के लिए उसे प्रलुब्ध करने का प्रयत्न करता है–

“अउ बेटियाँ ल छोड़व बहुरिया ला चंदा

तोर बर तजौ परान।

अउ पुन्नी के चंदा कड़ा दशमत

भादो के बिल्ली ताय।

अउका तोला कुंदे कुंदें कुन्दरवा, साँचा म धारे सोना।"

अपनी सात रानियों को त्यागने और 42 गाँवों का राजपाट न्यौछावर कर देने की बात कहता है। तब भी दशमत उसे समझाने-बुझाने की कोशिश करती है। इस कोशिश में वह राजा के ब्राह्मण कुलोत्तपन्न होने के गौरव और अभिजात्य का हवाला देते हुए वर्णक्रम में अपनी निम्नतर स्थिति के कारण दोनों का मेल न हो सकने के लिए तर्क रखती है–

"अरे मंद-मांस ल खाबे राजा, जब लगबे मोर साथ।"

(पीसी लाल यादव द्वारा संकलित चैतराम देवार के पाठ से)

वर्णसत्ता और पितृसत्ता द्वारा निर्धारित सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण यहाँ स्वयं वह राजसत्ता कर रही है, जो उसकी रक्षा के लिए संकल्पित है। इस सामाजिक मर्यादा की दुहाई देने की विडम्बना यह भी है कि इस सामाजिक मर्यादा की दुहाई वह जनसत्ता दे रही है, जिसके दमन के हथियार के तौर पर उसे राजसत्ता ने गढ़ा है। एक गरीब मेहनतकश ओड़िया स्त्री के रूप में दशमत कैना की आत्मछवि दरअसल वर्ण और जाति पर आधारित सामंती मानक से तय की गयी और उस पर थोपी गयी 'प्रदत्त छवि है, जिसे आत्मसात कर आत्महीनता का शिकार होती है। वह राजा को फटकार लगाने की बजाय समझाने का प्रयत्न करती है। इस प्रयत्न में विफल होने पर जब संकट उसके सिर पर आन पड़ता है तब अंत में अनुनय की बजाय वह प्रतिवाद का रास्ता चुनती है। प्रतिवाद अंतिम उपाय है। इसलिए लोक में दमित अस्मिताएँ प्रायः अनाक्रामक और सयंत दिखायी देती है।

वर्चस्व की शक्तियों के दमनकारी रूप का सामना करते हुए हर स्तर पर वह स्वयं आत्मदान का ही परिणाम प्राप्त करती है। वह मुक्ति की छटपटाहट से भरी होती है।

मुक्ति की छटपटाहट का साक्ष्य दशमत की संयत छवि में भी देखा जा सकता है। एक विवाहिता स्त्री के समक्ष अधिकार प्रणय-निवेदन करते पुरुष का प्रबल आग्रह किस तरह साक्षात आतंक बन जाता है, इसे दशमत के संकट से समझा जा सकता है। ऊपर से वह शांत रहकर राजा को समझाने का उपक्रम करती है, लेकिन उसकी छटपटाहट को प्रकट करने के लिए कथाकार को क्या अलग से कुछ कहने की जरूरत है? विडंबना यह है कि मुक्ति के लिए जिन तर्कों का वह इस्तेमाल करती है, वे पितृसत्ता के ही तर्क हैं। अपने ही तर्कों से घिरी स्त्री के संकट का अनुमान दशमत के चरित्र से किया जा सकता है। वस्तुतः दशमत की छटपटाहट पितृसत्ता के दायरे में ही लैंगिक स्वतंत्रता अर्जित करने की जद्दोजहद है। या स्वयं की स्वतंत्रता जब पूरी तरह संकट में पड़ जाती है, तभी वह प्रतिरोध के लिए प्रस्तुत होती है।

राजा महमदेव के अमर्यादित आचरण को अंतिम छोर तक सहन करने के बाद भी दशमत उसके प्रणयावेश का शमन करने के लिए संयम का सहारा लेती है। वह प्रतिरोध की अपेक्षाकृत नरम उपाय का इस्तेमाल करती है, जो कि दरअसल राजा के अभिजात्य, उसकी वर्ण-श्रेष्ठता पर सीधी चोट है। दशमत राजा को सूअर का मांस खाने और शराब पीने की शर्त रखती है–

“बारा बरर के बाम्हन राजा मैं ओडनिन में जात।”

(चैत राम देवार के पाठ से)

गाथा के एक अन्य पाठ में एक बुजुर्ग ओड़िया स्त्री राजा के सामने इस तरह की शर्त रखती है–

“हमर जात के बेटी बनावे, अउ खाबे मंद-मास।

तब ओनिन ल पाबे राजा,

अइसे तय नहीं पास।”

(डॉ. पालेश्वर शर्मा की पुस्तक 'तिरिया झनि देय' से सोनऊराम निर्मलकर द्वारा अपनी शोध-कृति 'देवार की लोकगाथाएँ में उद्धृत /पृ. 451)

कहना न होगा कि यह एक कठिन शर्त है। यह राजा की आत्म पहचान पर आक्रमण है। इस शर्त को पूरा करने पर अपनी जाति को खो बैठेगा। यह जान-समझ कर ही शर्त रखी गयी है कि इससे आखिरकार वह हथियार डाल देगा, लेकिन प्रणयांध राजा अपनी जाति और सामाजिक प्रतिष्ठा खोने को भी तैयार है। वह शर्त मंजूर कर लेता है। प्रतिरोध का यह अस्त्र भी विफल हो जाने पर दशमत अन्ततः कठोर उपाय अपनाने को बाध्य होती है। उसे सुअर का मांस खिलाकर शराब पिलाकर, बेसुध कर, खटिया पर लिटा देती है। उसके बालों को गदही की पूंछ से बाँध कर बाहर निकाल देती है। गदही की पूंछ से बँध कर घिसटता राजा सबकी हँसी का पात्र बनता है।

उपहास यहाँ प्रतिरोध का अस्त्र है। लोकसंस्कृति के अध्येता मानते हैं कि 'लोक जिन स्थितियों को अनुकूल नहीं बना पाता या बदल नहीं पाता, उन्हें उपहास का विषय बना देता है।

(बद्रीनारायणः 'मुक्त जीवन का भाष्य' शीर्षक लेख / मड़ई-9 is.19)

दशमत का प्रतिरोध कहना न होगा कि उसकी असहायता, विवशता और आत्मदमन का विस्फोट है। उपहास इसी की अभिव्यक्ति है।

गाथाकार का कौशल यह है कि उपहास को तीक्ष्ण और प्रभावी बनाने के लिए वह राजा के बेसुध नृत्यरत होने की तुलना बंदर-भालू के नर्तन से करते हुए व्यंजना में उसकी पाशविकता की पराजय की तरफ संकेत करता है–

“छंक-छंक ल ग पीए ग बाम्हन उठ के नाचत है आज

दंगरस-दंगरस बाम्हन देवता

नाचे बे रंडी ताल

नाचे ग भड़ुवा के नाचा ल

नाचे बेंदरा के नाच।"

(भैसवार देवार के पाठ से)

सामंती पुरुषसत्ता की इस पाशविकता के वस्तुतः तीन अनुषंग हैं–विवेकहीनता, निष्ठुरता और मर्यादाहीनता। बंदर-भालू की तरह नाचते राजा की छवि में उन तीनों का प्रतिकार मूर्त हो उठता है, लेकिन प्रतिकार का चरम रूप तो गदही का पंूछ से बँधे राजा के घिसटने के प्रसंग में दिखायी देता है।

यह प्रसंग प्रेमचंद की 'गोदान' में मातादीन-सिलिया के प्रसंग की याद दिलाता है। मातादीन-सिलिया के अनुलोम संबंध को ब्राण समुदाय स्वीकार नहीं करता, लेकिन दलित भी उसे सहजता से नहीं स्वीकारते। दलित, मातादीन को खूब पीट कर उसके मुंह में हड्डी का टुकड़ा डालकर उसका ठीक उसी रीति से उड़िया-जन राजा महमदेव को मांस-मदिरा सेवन कराते हुए अपने समुदाय में दीक्षित करते हैं। दोनों प्रसंगों में प्रतिरोध की पद्धति में जो एकरूपता दिखायी देती हैं, क्या इससे यह अनुमान नहीं होता कि लोक के भीतर वर्णवाद-विरोधी चेतना प्राक-आधुनिक और औपनिवेशिक स्थितियों में भी निरंतर सक्रिय रही है?

"एक छाक ले दू पी गे राजा

अब दू ले भइगे तीन।

अउ सात छाक के मंदे पिवत।

अउ बेंदरा नाच ले नाचे ग राजा

भलुआ नाच ल नाचे गा।

सुंदर नाचन नाचे रे।" (चैतराम देवार के पाठ से)

निम्नवर्गीय अस्मिताओं के संस्कृतिकरण संबंधी एम. एन. श्रीनिवासन की समाजशास्त्रीय अवधारणा की रोशनी में राजा की जाति-स्खलन के इस प्रसंग को देखें तो यहाँ एक नयी अवधारणा को उभरते देखा जा सकता है, जो संस्कृतिकरण का विलोम है। वर्ण-जाति और सामंती कुलीनता पर आधारित अपनी पहचान त्याग कर राजा स्वेच्छा से मांस-मदिरा-सेवन को तैयार है। उच्चवर्ग द्वारा निम्न वर्ग की जीवन-शैली के स्वैच्छिक ग्रहण का यह उदाहरण अथवा 'गोदान' में मातादीन के दलितीकरण का उदाहरण एक विरल सच्चाई की तरफ संकेत करता है। यह वास्तविक जीवन में कम देखने को मिलता है, लेकिन कला के इच्छालोक में इसकी मौजूदगी यही बताती है कि उपहास को प्रतिरोध के अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हुए सर्जक मन दरअसल दमित अस्मिता की मुक्ति-कामना को व्यक्त कर रहा होता है। उच्च वर्ग का यह

आत्म-समर्पण यथार्थ-जीवन में कम मगर दलित जीवन के स्वप्न-लोक में अधिक घटित होता है। संस्कृतिकरण का विलोम होने के कारण इसे 'प्रति संस्कृतिकरण' कहना उचित होगा।

दिलचस्प है कि गाथा के एक पाठ के राजा, दशमत की खातिर मदिरा-मांस का सेवन ब्राणत्व का परित्याग करने को राजी है, किंतु अगले दिन पूजा-पाठ कर फिर से वह ब्राण बन जाने की इच्छा पैदा करता है। यह ब्राणवादी पितृसत्ता की चतुराई की ओर इशारा है कि दशमत को पाने की शर्त पूरी करने भर के लिए वह वर्ण स्खलन को स्वीकार करता है और बाद में तुलसी पत्ते की पूजा कर पुनः वर्णोन्नत होना चाहता है।

“अरे तोरा सुंदर के कइना ला पाहू।”

अउ मंदे के कउन बिसात, अरे बधिया के कउने विसात। आजेच खाहुँ मन्दे-मांस ल, काली जाहु नलय। तुलसी पतर जी के पूजा ल कर लेहूँ, फिर बाम्हन हो जाऊँ कहे।

(चैतराम देवार के पाठ से)

'गोदान' में भी मातादीन को भी शुद्धिकरण के द्वारा द्विज समाज अंगीकृत कर लेता है। इस तरह वह प्रति-संस्कृतिकरण उलट नहीं पाता, ब्राण के भीतर उसे उलटने की इच्छा जरूर जागती है। दरअसल आगे का घटनाक्रम इतनी तीव्रता से घटित होता है कि राजा को यह इच्छा पूरी करने का अवसर ही नहीं मिल पाता और वह दशमत के क्षुब्ध प्रतिरोध का शिकार हो जाता है।

दशमत का प्रतिरोध व्यक्तिवाची या एकल प्रतिरोध नहीं है। उसके साथ नौ लाख उड़िया-जनों की सामुदायिकता है, जिसकी वजह से राजा उसके साथ जबरदस्ती नहीं कर सकता। श्रमजीवियों की सामूहिक शक्ति उसके प्रणय को उदंड नहीं होने देती, किंतु उसकी दुर्दांत आग्रहशीलता से रुष्ट होकर अंततः उसे दंडित करती है। दशमत को न सिर्फ श्रमजीवियों का नैतिक संरक्षण प्राप्त है, बल्कि दमित स्त्री-सत्ता का मूक समर्थन भी उसे मिला हुआ है। इसका संकेत राजा महमदेव की दुर्गति का समाचार जानने के बाद उसकी सातों रानियों की प्रतिक्रिया में मिलता है।

गदही का लात खाते, रोते-कलपते पति की चीख-पुकार से नहीं पसीजता। राजा अपने बेटे मोहनसिंह को पुकारता है, लेकिन सातों रानियाँ उसे राजा की मदद करने से बरज देती है–

“दउड़ो रे बेटा मोहन सिंग जी

बचा मोर जीव ल, बचा मोर जीव ल

दउडो रानी, बचा मोर जीव ल कहिके

कलप-कलप के रोय ल लगिस रे भाई

उही बखत में मसूर ल धर रानी मन

बेटा ल बरज दीन ग, सातों रानी मन

—'येकर करा के साध ल झन कर बाबू

आज सात झन रानी रहिन

का कमी रहिन गा? तेला बता

ओडनिन खातिर जिव ल गवाथे

तेला जान दे।"

दशमत का प्रतिरोध स्त्री के वस्तुकरण की सामंती संस्कृति के विरुद्ध है। वह पुरुष में मूर्तिमान कामना की ऐंद्रिकता का शिकार बनने से इंकार कर देती है। वह दमनकारी पुरुष-सत्ता को सबक सिखाने के लिए उपहास की धार से उसका बधियाकरण पौरुष और पराक्रम से वंचित और बुरी तरह अपमानित कर शक्तिहीन-कर देती है। यह एक तरह का मनोवैज्ञानिक शिश्नोच्छेद है, स्त्री का चरम प्रतिकार है, जिसके बाद पुरुष को एक गहरे आत्मलांछन से गुजरना होता है। गदही की पूंछ से घसीटते हुए यातना भुगतने के बाद राजा को आत्महीनता और अपमान के अलावा और क्या महसूस हुआ होगा?

इस चरम प्रतिकार का फैसला लेने से पहले, दिलचस्प है कि दशमत राजा को समझाइश देने की प्रक्रिया में एक तरह की सौदेबाजी करती है। पहले वह राजा से मिट्टी फेंकने का काम करवाती है। उसे आम ओड़िया-जनों की तरह श्रमिक बनने पर मजबूर करती है। यूं कहें कि दशमत राजा की सामंती सुविधाजीवी अस्मिता पर अपनी निम्नवर्गीय अस्मिता का आरोपण करती है, लेकिन दशमत या उड़िया-जनों की श्रमजीवी पहचान के साथ राजा अपने को जोड़ नहीं पाता, इसलिए मिट्टी का भारी काम छोड़कर कोई और काम देने की विनती करता है। इस विनती में, कहने की जरूरत नहीं है, श्रमिक-संस्कृति के सम्मुख सामंती सुविधावाद की पराजय की पीड़ा छिपी हुई है। राजा को दशमत के लिए श्रमिक बनना स्वीकार है, किंतु श्रम करने की क्षमता के अभाव में वह असहाय है। उच्च वर्ग पर निम्नवर्गीय पहचान के आरोपण के लिए सौदेबाजी की यह रणनीति वस्तुतः प्रतिवाद की रणनीति है।

राजा द्वारा श्रमिक जीवन अपनाने में असमर्थ साबित होने के बाद दशमत कैना के शब्द–

आरोपण के दूसरे चरण में राजा को निम्नवर्गीय अस्मिता अंगीकार करने के लिए बाध्य करती है। उसके ब्राणत्व का गौरव छीन लेती है। राजा के वर्णगत मिथ्याभिमान को कुचल देना दशमत की प्रतिवादी रणनीति का हिस्सा है। तीसरे चरण में वह सीधे पितृसत्ता के वरदहस्त से मिली पहचान, उसके पशुत्व पर आघात करती है, उसे बुरी तरह अपमानित कर उपहासास्पद और निरीह बना देती है। यही उसका चरम प्रतिवाद है।

इस प्रतिवाद के बाद, जाहिर है, दशमत और नौ लाख ओड़िया-जनों की खैर नहीं। वे उस स्थान को छोड़कर सुरहिडीह चले जाते हैं। वहाँ पहुँच कर राजा उन सबको युद्ध में समाप्त कर देता है। गाथा के एक अन्य

पाठ में नौ लाख ओड़िया रात भर में एक विशाल बाँध खोदकर उसमें डूब मरते हैं। अंत में दशमत ओड़नीन राजा की दीवानगी को देखकर अपने पति के साथ सती हो जाती है।

पुरुष-सत्ता से संघर्ष करती हुई स्त्री का इस तरह सती हो जाना गाथा के आधुनिक श्रोता को अकस्मात् जैसे झटका देता है, लेकिन अगर इसे प्राक-आधुनिक स्त्री के मनोलोक में सती की जो महिमामंडित छवि स्थापित है, वह असाधारण नैतिक गरिमा से दमकता पवित्र आभामंडल निर्मित करती है। इस स्थिति के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों में मुक्ति का स्त्रीतत्व उस आभामंडल में विलीन हो जाता है। इस स्त्रीतत्व का परम लक्ष्य मुक्ति है। सती पद के माध्यम से बैकुंठ प्राप्ति प्राक-आधुनिक स्थितियों में मुक्ति का मान्य नुस्खा है। स्त्री यौन पवित्रता का विचार एक तरफ उसे पुरुष के एकाधिपत्य के दायरे में रखता है, दूसरी तरफ सतीत्व की गरिमा में परिणित होकर वह स्त्री के आत्मत्याग को दैवी महिमा की आत्ममुग्धता से भर देती है। सतीत्व का गौरव प्राप्त कर दशमत मानो प्राक-आधुनिक स्त्री जीवन का उच्चतम पद प्राप्त करती है, जबकि दशमत को पाने से वंचित होकर राजा महमदेव भी अंततः अपना जीवन समाप्त कर लेता है। यही उसकी सजा भी है गाथा में नायक-नायिका की इस परिणत को 'काव्य-न्याय' भी कहा जा सकता है। लेकिन 'सामाजिक न्याय' को आधुनिक विचार-पद्धतियों के सहारे जीवन और कला को देखने वाली दृष्टि इसमें पितृसत्ता की ही विजय देखती है।

यह दिलचस्प है कि गाथाकार (जिसकी सत्ता निश्चय ही बहुवचनात्मक होगी। अर्थात् अनेक लोगों ने मिलकर एक लंबे दौर में, श्रुति परंपरा के द्वारा यह गाथा रची और संचारित की होगी) ने इसके शिल्प में एक सर्जनात्मक युक्ति के तौर पर, सतीत्व को कलात्मक रूप से न्यायसंगत ठहराने के लिए दशमत और राजा को भतीजी और चाचा बताते हुए राजा की आसक्ति को कौटुंबिक अभिचार निरूपित कर कथा में उसका प्रवेश कराया है।

“सुंदर के देख ले झन मोहा ग बाम्हन देवता।

तोर मय भतीजीन अव ऐसे कहिके समझावत हे

वो बाम्हन ह फेर मानबे नई करे।”

(भैंसवार देवार के पाठ से)

यद्यपि गाथा के सभी पाठों में यह नहीं मिलता। भैंसवार देवार के गाथा-पाठ में इस मुक्ति के प्रयोग से एक ऐसी नैतिक विडंबना निर्मित की गयी है, जिसकी परिणीति के रूप में दशमत का सतीत्व वैधता का तर्क हासिल करता है। यहाँ कौटुंबिक अभिचार चाचा-भतीजी (अर्थात् पिता-पुत्री) के संबंधों में संभावित है।

इसका ज्ञान दशमत को है, लेकिन राजा उस पर विश्वास नहीं करता। गाथाकार मौन है, लेकिन अनुमान किया जा सकता है कि इस संबंध की संभावना से दशमत पर क्या बीती होगी। क्या वह भीतर से कांप न उठी होगी ? राजा महमदेव भले ही आसक्ति में अंधा हो गया हो, लेकिन उसकी भतीजी के रूप में उसके अमर्यादित आचरण का सामना करते हुए क्या दशमत के भीतर उसके प्रति सिर्फ रोष पैदा हुआ होगा या

ग्लानि बोध भी ? गाथाकार दशमत की मनोदशा का चित्रण नहीं करता, लेकिन गाथा सुनते या उसके लिखित पाठ से गुजरते हुए उसका अनुमान तो सहज ही किया जा सकता है? गाथाकार ने तो सिर्फ उसकी भतीजी होने का जिक्र-भर किया है और संकेत किया है कि उसके आकर्षण में अंधा होकर राजा संबंधों की मर्यादा का अतिक्रमण करने से नहीं हिचकता, लेकिन इससे उत्पन्न नैतिक संकट को वह विमर्श का विषय नहीं बनाता। इस पर विचार किये जाने की जरूरत है। गाथा में प्रसंग पर जोर नहीं दिया गया है, उसका उल्लेख कर छोड़ दिया है। इसमें निहित विडंबना का इस्तेमाल सम्भवतः राजा के मति-लोप की और उसके निरंकुश चरित्र को उभारने के लिए किया है, लेकिन सती होकर अंत में दशमत अपने प्राण त्याग देती है, तो क्या यह उसकी ग्लानि-दग्ध मनोदशा की ही परिणीति नहीं मालूम पड़ती? इस तरह गाथा में कौटुम्बिक अभिचार की संभावना दशमत के भीतर जिस आत्म-संकट को जन्म देती है, वह फ्रायडीय मनोविज्ञान के मुताबिक एक किस्म की मनोग्रन्थि का ही परिणाम हो सकता है। यह ईडिपस ग्रन्थि का प्रतिलोम अर्थात् इलेक्ट्रा ग्रंथि है। दशमत की नियति मानो इस मनोग्रंथि से जुड़ जाती है, तो उसे आत्मविसर्जन का मार्ग दिखाता है।

दशमत के सती होने का प्रसंग एक भिन्न स्तर पर राजा के स्वेच्छाचार की प्रतिक्रिया है। गाथाकार मुख्यतः इसी पर बल देता है। आत्मविसर्जन यहाँ आत्मरक्षा का आखिरी उपाय बन जाता है। उसे अलाउद्दीन के आक्रमण से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पद्मिनी की देहत्याग के ऐतिहासिक प्रसंग के साथ रखकर पढ़ें तो दोनों में अद्भुत समानता दिखायी देती है। ओढारबाँध में भी चित्तौड़ की तरह जौहर का दृश्य है-बाँध की अथाह जलराशि में नौ लाख उड़िया डूब मरते हैं अथवा एक अन्य पाठ में राजा के खिलाफ युद्ध करते हुए प्राण न्यौछावर कर देते हैं। मध्यकालीन इतिहास की एक सच्चाई लोक-गाथा के कल्पना-लोक में इस तरह लगभग जस-की-तस दृश्यांतरित हो उठेगी, यह कौन सोच पाएगा? भारतीय स्त्री की नियति दोनों प्रसंगों में, पितृसत्ता के सर्वसत्तावाद से जुड़ी दिखायी देती है। यह पुरुष प्रपंच की शिकार स्त्री की कथा है। इतिहास का सच इस गाथा का सच बन गया है। कहना न होगा कि यही समाज का सच है। वह पितृसत्ता के क्रूर शिकंजे में पड़कर छटपटाती स्त्री का सच है।

'दशमत कैना' की यह गाथा एक दमित स्त्री की संघर्ष-कथा है, जो श्रम, जाति और वर्ण पर आधारित निम्नतर सामाजिक अस्मिता के प्रतिरोध को नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है।

'दशमत कैना' में आख्यान को देवार जाति के आत्म-वृत्तांत के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। यह इस आख्यान के वर्णसत्ता परक पाठ का ही विस्तार अर्थात् एक संवर्धित पाठ होगा।

खानाबदोश जातियों की सामाजिक परिस्थिति उनकी जीवन-शैली के कारण प्रायः अस्थिर होती है। अत: सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि देवार जाति किस तरह इस त्वरित पारिस्थितिकीय बदलाव से निरंतर जूझते हुए जीवन-यापन करती है। सम्भवतः गरीबी और स्थायी रोजगार के अभाव में वह खानाबदोश हुए हों। वे भूमिहीन हैं और मजदूरी भी नहीं करते। सामाजिक विकास की दृष्टि से वे पशुपालक समाज की अवस्था में जान पड़ते हैं। अभी हाल-हाल तक देवार पुरुष जीवन-यापन के लिए सांप

पकड़ कर या बंदर नचा कर लोगों का मनोरंजन करते दिखायी देते थे। वे ढोलकी और रुझुं बजाते ताबीज देते या जड़ी-बूटी बेचते और स्त्रियाँ नाच गाकर परिवार की आमदनी में योगदान करती थीं। अब यह काम छोड़कर स्त्रियाँ कबाडी के छोटे-मोटे सामान एकत्र करती हैं, हालाँकि अब भी अनेक देवार सुअर पालते हैं और यही उनका मुख्य व्यवसाय है। अभी भी वे निचाट गरीबी की जिंदगी जीते हैं। सामाजिक श्रेणी में भी वे अत्यंत हीन वर्ण के और अस्पृश्य माने जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि गरीबी, घुमंतू-जीवन शैली और निम्नवर्णीय सामाजिक स्थिति के कारण उनका जीवन सतत् असुरक्षित होता था और अब प्रायः स्थायी रूप से बस जाने के बाद भी उनका यह असुरक्षा-बोध समाप्त नहीं हुआ है। इस असुरक्षा बोध का सर्वाधिक शिकार महिलाएँ थीं। आश्चर्य नहीं कि देवार स्त्रियाँ पुरुष-कुदृष्टि का सामना करने को प्रायः उसी तरह मजबूर हैं, जिस तरह लोकगाथा में दसमत राजा महमदेव की कुत्सा (जो प्रेम में उसकी दीवानगी की शक्ल नमूदार होने के बावजूद आखिर कुत्सा ही है) का शिकार हुई है।

इस दृष्टि से देखें तो देवार-स्त्रियाँ निरंतर अपनी असुरक्षित भावना के साथ जीने को अभिशप्त रही हैं। यूँ देवारों के परिवारिक जीवन में मातृ-सत्ता अपेक्षाकृत स्वतंत्र और मुखर है, इसलिए पितृसत्ता के दमन से देवार स्त्रियाँ, शिष्ट या उच्चवर्णीय समाज की स्त्रियों की तुलना में, काफी हद तक मुक्त हैं, किंतु परिवारिक दायरे के बाहर पितृसत्ता के लोलुप और हिंस्र मौजूदगी से बराबर घिरे परिवार के कारण वे असुरक्षित होने के एहसास से भी घिरी हैं। राजा महमदेव की दुर्दांत इंद्रियशक्ति के समक्ष दशमत के असुरक्षा-बोध पर गौर करें तो क्या ऐसा नहीं लगता कि उसके भीतर मानो देवार-स्त्रियों की असहायता ही रूपांतरित होकर उसे एक प्रतीक में बदल देती है? गाथाकार देवारों ने शायद 'दशमत कैना' के बहाने अपनी ही स्त्रियों की व्यथा-कथा कही हो। इस अर्थ में यह वृत्तांत देवारों की आत्मकथा है।

देवार स्त्रियाँ कला-अभिव्यक्ति में निपुण मानी जाती हैं। देवारों की सर्जनात्मक कल्पना उनके द्वारा गायी जाने वाली गाथाओं में साकार हुई है। इन गाथाओं में, क्या कोई कह सकता है कि उनके जीवनानुभव नहीं है ? अपनी संकटग्रस्त यौनिकता की रक्षा को लेकर दसमत की विफलता दरअसल देवार-स्त्रियों के अनुभव-जगत का ही रूपात्मक विस्तार है। वास्तविक जीवन में वे पुरुष सत्ता की अदम्य लोलुपता और उत्पीड़न के आगे परास्त होने के दंश और अपनी यौन-शुचिता को लेकर सतत् असुरक्षा के बोध के साथ जीती हैं। इस दंश और असुरक्षा-भाव के क्षतिपूरक के रूप में यदि दशमत की संघर्ष वृत्ति उन्हें थोड़ा सुकून देती हो तो इसमें कुछ भी अप्रत्याशित नहीं है। यथार्थ की दुनिया में जिस आजादी और सुकून को वे खो बैठी हैं, उसकी भरपाई वे गाथा के कल्पना लोक में करती हैं। दशमत उनका आदर्श है। इसी आदर्श में वे जैसे अपनी इच्छित छवि की पहचान करती हैं। यह छवि लैंगिक पराधीनता से मुक्त स्त्री की छवि है।